असमर्थ हैं।''

2. **रैयतवारी बंदोबस्त** – उन्नीसवीं सदी के आरंभ में मद्रास तथा बम्बई के कुछ क्षेत्रों में रैयतवारी बंदोबस्त लागू किया गया। इसके अनुसार भूमि जोतने वाले को उस भूमि का स्वामी माना जाता था, बशर्ते कि वह भू-राजस्व चुकाता रहे। अंग्रेजों ने उन मिरासदारों (ग्रामीण समुदायों के सदस्यों) तथा किसानों को भी मान्यता दी जो सीधे राज्य को कर दिया करते थे। ये मिरासदार छोटे-मोटे जमींदार बन गए थे। किंतु इस प्रथा से भूमि का जो स्वामित्व मिलता था, उसका विशेष लाभ नहीं था। इसके तीन कारण थे:

(क) भू-राजस्व की अनुचित दर।

(ख) भू-राजस्व की दर में मनमाने ढंग से वृद्धि करने का सरकार का अधिकार।

(ग) भू-स्वामित्वधारकों को हर स्थिति में भू-राजस्व देना ही पड़ता था, भले ही उसकी उपज आंशिक रूप से अथवा पूर्णरूप से नष्ट हो गई हो।

Scanned with CamScanner

गाँव की चारागाहों एवं परती जमीन पर भी अब राज्य ने अधिकार कर लिया था। पहले इन क्षेत्रों पर ग्राम समुदायों का अधिकार होता था। इससे भू-राजस्व का भार और बढ़ गया।

**3. महलवारी बंदोबस्त** – जमींदारी का एक और रूप था महलवारी बंदोबस्त। यह व्यवस्था गंगाघाटी, उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों, मध्य भारत के कुछ क्षेत्रों तथा पंजाब में लागू की गई। इसके अनुसार प्रत्येक गाँव के लिए अलग बंदोबस्त होता था। जमींदार अथवा वे घराने जो जमींदार होने का दावा करते थे, उन्हीं के हाथों सरकार यह बंदोबस्त सौंपती थी। अंग्रेजों ने परंपरा से चली आ रही भू-व्यवस्थाओं में मौलिक परिवर्तन किए। भू-व्यवस्था में हुए इन परिवर्तनों ने भारतीय गाँव की स्थिरता, स्वायत्तता को हिलाकर रख दिया।

**भू-राजस्व व्यवस्था के प्रभाव** – अंग्रेजी भू-राजस्व व्यवस्था में अत्यधिक कर तथा नवीन प्रशासनिक एवं न्यायिक प्रणाली के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। ग्राम पंचायतों के मुख्य कार्य, भूमि-व्यवस्था तथा न्यायिक कार्य समाप्त हो चुके थे तथा इस समय में पाटिल सरकार की ओर से केवल राजस्व संग्रहकर्ता ही रह गया था। इस प्रकार ग्रामों में प्राचीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी थी। भारतीय कुटीर-उद्योग लगभग समाप्त हो गये। इस प्रकार की भू-व्यवस्था से भूमि तथा कृषक दोनों ही चलनशील (Mobile) हो गये थे, जिसके कारण ग्रामों में साहूकार तथा अन्यत्र भूमिपति (Absente Land holders) उत्पन्न हो गये।

समाज में जमींदार तथा साहूकार, जिनकी ग्राम निवासियों को अब अधिक आवश्यकता होने लगी थी, बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति हो गये। अब ग्रामीण श्रमिक वर्ग जिसमें छोटे-छोटे किसान, मुजारे तथा भूमिहीन किसान सम्मिलित थे, उनकी संख्या बढ़ गयी। सहकारिता के स्थान पर आपसी प्रतिद्वन्दिता तथा व्यक्तिबाद को बढ़ावा मिला तथा पूँजीवाद के पूर्वाकांक्षित तत्व उत्पन्न हो गये। अब उत्पादन के नये साधनों जिनमें धन की आवश्यकता होती थी, मुद्रा अर्थव्यवस्था, कृषि का वाणिज्यीकरण, संचार व्यवस्था में सुधार तथा विश्व मण्डियों के साथ सम्पर्क, इन सभी तत्वों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को तथा भारतीय कृषि को एक नया रूप दे दिया।

**निकास सिद्धान्त**

निकास सिद्धान्त का तात्पर्य भारत में धन-सम्पत्ति एवं माल का इंग्लैंड में हस्तांतरण था, जिसके बदले में भारत को इसके समतुल्य कोई भी आर्थिक, वाणिज्यिक या भौतिक

Scanned with CamScanner

प्रतिलाभ प्राप्त नहीं होता था। इस प्रकार भारतीय दृष्टिकोण से निकास सिद्धान्त का अर्थ था, आयात की तुलना में अधिक निर्यात का होना। अनेक भारतीयों ने निकास के द्वारा देश से बाहर जाने वाली धनराशि का आकलन करने का प्रयास किया। इस बर्हिगमन का सबसे महत्वपूर्ण घटक ब्रिटिश प्रशासनिक, सैनिक और रेलवे अधिकारियों के वेतन, आय और बचत के एक भाग को भेजा जाना और भारत सरकार द्वारा अंग्रेज अधिकारियों की पेंशन तथा अवकाश भत्तों को इंग्लैंड में भुगतान करना था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लंदन स्थित कार्यालय की व्यवस्था तथा इसके शेयरधारकों के लाभांश का भार, 1858 के बाद भारत विषयक मंत्री के इण्डिया ऑफिस के व्ययों के लिए भारत में इंग्लैण्ड धन भेजा जाना भी इसमें शामिल थे।

1813 के बाद धन के बर्हिगमन की सबसे बड़ा मद गृह प्रभार थे। 1833 में कम्पनी ने अपनी वाणिज्यिक गतिविधियों को पूर्णत: समाप्त कर दिया। अत: कम्पनी के शेयर धारकों को भारत के राजस्व में से साढ़े दस प्रतिशत वार्षिक लाभांश देना पड़ा। इसलिए कम्पनी को इन प्रभारों की अदायगी के लिए ऋण लेने पर बाध्य होना पड़ा। परिणामस्वरूप कम्पनी के ऋण में भारी वृद्धि होने लगी। चूंकि कम्पनी ने ऋण इंगलैंड में लिए थे, इसलिए इस ऋण का भुगतान, धन के बर्हिगमन का अन्य श्रोत बन गया।

1857 के विद्रोह के बाद जब भारत का शासन ब्रिटिश शाही ताज के अन्तर्गत आ गया तब भारत के धन का बर्हिगमन सेवाओं के यूरोपीयकरण, अपेक्षाकृत बड़ी सेना, अधिक पूंजी निवेश, रेलवे के विस्तार साज समान एवं उपकरणों की अधिकाधिक खरीद, अधिक और ऊंचे वेतनों के भुगतान आदि के कारण और अधिक बढ़ गया। कम्पनी के सम्पूर्ण ऋणों को ब्रिटिश शासन ने अपने ऊपर ले लिया। विद्रोह को दबाने में हुए व्ययों के रूप में 47 करोड़ रूपये भारत के कर्ज में जुड़ गए। भारत को कई अनुचित प्रभार भी अदा करने पड़े। परिणामस्वरूप भारत का ऋण जो 1858 में 700 लाख पौण्ड था, बढ़कर 1876 में 1,400 लाख पौण्ड, 1900 में 2,240 लाख पौण्ड, 1913 में 2,740 लाख पौण्ड और 1939 में 8,840 लाख पौण्ड हो गया। इस ऋण पर देय वार्षिक ब्याज भारत से धन के बर्हिगमन का एक बड़ा भाग होता था।

**भारत में अंग्रेजों की आर्थिक व वाणिज्यिक नीति**

1600 से 1757 तक भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की भूमिका एक ऐसे व्यापारिक निगम की थी जो भारत में

Scanned with CamScanner

या बहुमूल्य धातुएं लाता था तथा उनके बदले कपड़े, मसाले आदि भारतीय माल लेकर उन्हें विदेशों में बेचता था। इसके मुनाफे का मुख्य स्रोत विदेशों में भारतीय माल का विक्रय था।

1720 तक छापेदार या रंगे सूती वस्त्रों के व्यापार पर प्रतिबंध लगाने वाले कानून बन चुके थे। हालैंड को छोड़कर दूसरे यूरोपीय देशों ने भी भारी वस्त्रों के आयात पर या तो प्रतिबंध लगा दिए या उन पर भारी आयात-शुल्क लगा दिए। लेकिन इन कानूनों के बावजूद भारत के रेशमी और सूती वस्त्र 18वीं सदी के मध्य तक विदेशी बाजारों में जमें रहे। मगर तब तक नई और विकसित प्रौद्योगिकी के आधार पर ब्रिटेन का वस्त्र उद्योग पनपने लगा था।

औद्योगिक क्रांति के कारण ब्रिटेन का अधिकाधिक नगरीकरण होता गया। अधिकाधिक लोग कारखानों वाले नगरों में बसने लगे। 1750 में ब्रिटेन में 50,000 से अधिक जनसंख्या वाले केवल दो नगर थे जबकि 1851 में इनकी संख्या 29 हो चुकी थी।

1769 में ब्रिटिश उद्योगपतियों ने एक कानून बनवाकर कंपनी को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि प्रति वर्ष 3,80,000 पौंड से अधिक मूल्य के ब्रिटिश कारखानों के माल का निर्यात करे, हालांकि इस सौदे में कंपनी को बहुत घाटा हुआ। 1793 में उन्होंने कंपनी को मजबूर किया कि वह अपने जहाजों में उन्हें प्रति वर्ष 3000 टन माल ढोने की छूट दे। पूर्वी देशों खासकर भारत को 1794 में 156 पौंड के ब्रिटिश सूती कपड़ों का निर्यात हुआ, मगर 1813 तक यह निर्यात बढ़कर ,10,000 पौंड का, अर्थात लगभग 700 गुना हो गया, लेकिन ाह बढ़ोत्तरी भी लंकाशायर के उद्योगपतियों की आशा से कम ुब्ध हुई जो अब भारत में अपना निर्यात बढ़ाने के लिए ए-नए तरीके ढूंढ़ने लगे।

इस तरह 1813 के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी की व्यापारिक ाति का निर्धारण ब्रिटिश उद्योग की आवश्यकताओं के अनुसार ने लगा। इसका मुख्य उद्देश्य भारत को ब्रिटेन के कारखानों माल का उपभोक्ता तथा कच्चे मालों का निर्यातक बनाना

Scanned with CamScanner